राजस्थान में पितृसत्ता के ख़िलाफ़ ग्रामीण स्त्रियों का संघर्ष : गाँव पंचेतिया, जोधपुर (फ़ोटो : आसू)

मध्यकालीन मारवाड़ में 'डाकण' नारी प्रताड़ना के बदलते स्वरूप

कैलाश रानी

मेरा यह शोध-पत्र अठारहवीं शताब्दी के राजपूताना (आज के राजस्थान) में स्त्रियों का घोर उत्पीड़न करने वाली डाकण नामक कुप्रथा पर केंद्रित है। इस कुरीति के अंतर्गत ऐसा माना जाता था किसी सामान्य स्त्री के पास ख़ासकर ऐसी विशेष अशुभ शक्ति आ जाती है जिसके माध्यम से वह अपना रूप बदल कर दूसरों के छोटे बच्चों की जान ले सकती है। ऐसी स्त्रियों को मारवाड़ के समाज में डाकण के नाम से सम्बोधित किया जाता था। सीताराम लालस ने अपने *राजस्थानी-हिंदी शब्दकोश* में 'डाकण' शब्द के पयार्यवाची के तौर पर डाकणि, डाकणी जैसे शब्दों का इस्तेमाल किया है। उन्होंने डाकण के अर्थ में हिंदी शब्द डायन दिया है।[1] 'डाकण दीठ चलाय निजर सूं प्राण लै' अर्थात् वह स्त्री जिसकी दृष्टि आदि के प्रभाव से बच्चे मर जाते हैं और जो दूसरों के बच्चों को नज़र लगा देती है।[2] कुछ इसी प्रकार की व्याख्या हमें रुस्तम भरूचा की रचना में लोक-प्रचलित कहानियों के माध्यम से डाकण के बारे में प्राप्त होती है। इसके अनुसार डाकण बुरी नज़र व बुरे शब्दों द्वारा अन्य व्यक्तियों को हानि पहुँचाने की क्षमता रखती है।[3] देश के विभिन्न हिस्सों में डायन को विभिन्न नामों से पुकारा जाता है। राजस्थान में डाकण, झारखण्ड में डाकन, ओडीशा में चिलंगी और छत्तीसगढ़ में टोन्ही आदि नामों का प्रयोग किया जाता हैं।[4] डायन को बानामती, चेताबाड़ी, हवा, बुरी नजर, हालका और दाहिनी नाम भी दिये गये हैं।

---

[1] सीताराम लालस (2006) : 434.
[2] सीताराम लालस (2015) : 1654.
[3] रुस्तम भरूचा (2009) : 129-135.
[4] कंचन माथुर (2009) : 287.

राजस्थान राज्य अभिलेखागार में मिलने वाले मूल स्रोत सनद परवाना बहियों में भी डायन के लिए डाकण शब्द प्रयुक्त किया गया है। बहियों के मुताबिक़ डाकण किसी के बच्चे, विशेषकर नवजात शिशु को नज़र भर देखने से मार डालती थी। रुस्तम भरूचा डाकण के बारे में बताते हैं कि डाकण नवजात शिशुओं के कलेजे को खाने वाली मानी जाती थी।[5] कंचन माथुर के अनुसार डाकण एक ऐसी स्त्री है जो अपने जादू, मंत्रों और अशुभ शक्तियों के सहयोग से विभिन्न बुरे उद्देश्यों की पूर्ति करती हो।[6] डायन और डायन प्रथा पर किये गये विभिन्न समकालीन अध्ययनों के अनुसार डायन से तात्पर्य एक ऐसी स्त्री से है जो अपनी विशेष शक्तियों द्वारा न केवल जनसाधारण के नवजात शिशुओं की हत्या करती है अपितु समाज में होने वाली प्रत्येक छोटी से बड़ी बीमारी के पीछे भी उसी का हाथ माना जाता है। वह अपनी दुष्ट शक्तियों के प्रयोग से अन्य लोगों की सम्पत्ति को हानि पहुँचाती है। वह वनस्पतियों और फ़सलों को नष्ट करने और मवेशियों को मारने के लिए अपनी ताक़त का इस्तेमाल करने वाली मानी जाती है।[7] ऐसी दुष्ट स्त्री से जुड़ी डायन की संकल्पना का राजस्थान में अठारहवीं शताब्दी से लेकर वर्तमान तक प्रचलन देखने को मिलता है। समाज ऐसी स्त्रियों से डरता था, इसलिए इन्हें चिह्नित करके ख़त्म करने या प्रताड़ित करने की कोशिश की जाती थी। इसी प्रकार भारत एवं विश्व के कई अन्य भागों में भी स्त्री को डायन क़रार दे कर प्रताड़ित किया जाता रहा है।

मारवाड़ का समाज और डाकण की संकल्पना

डाकण की संकल्पना के निर्माण में मारवाड़ की राजनीतिक, पर्यावरणीय तथा सामाजिक परिस्थितियों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। अपनी बात को आगे बढ़ाने से पहले यह ज़रूरी है कि मैं अठारहवीं सदी के मारवाड़ क्षेत्र की सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक स्थितियों का मूल्यांकन करते हुए उन्हें काफ़ी हद तक प्रभावित करने वाली प्राकृतिक परिस्थितियों की एक जानकारी दे दूँ। यह इसलिए भी ज़रूरी है क्योंकि इस इलाक़े का बहुत बड़ा हिस्सा मरुस्थलीय है। यहाँ पर कृषि उत्पादन की सम्भावनाएँ काफ़ी सीमित रहती हैं। अरावली पर्वतमाला के पश्चिम में होने की वजह से बंगाल की खाड़ी और अरब सागर से उठे मानसूनी बादल आम तौर पर ऐसे इलाक़े में अच्छी बारिश नहीं कर पाते। यह बात भी ग़ौरतलब है कि ज़्यादातर मरुस्थलीय इलाक़े में भूमिगत पानी खारा है जो कृषि की सम्भावनाओं को और भी सीमित कर देता है। मारवाड़ के दीवान मुहणोत नैणसी द्वारा रचित इतिहास *मारवाड़ परगना री विगत* के अध्ययन से साफ़ ज़ाहिर होता है कि इस इलाक़े में आम तौर पर साल में एक ही फ़सल होती रही है। इलाक़े की मुख्य पैदावारों में बाजरा, जौ, ग्वार, तिल, चना आदि है। कृषि के साथ पशुपालन भी आय का एक महत्त्वपूर्ण साधन है। जब-जब मारवाड़ राज का अधिकार नमक के एक बड़े स्रोत साँभर झील पर स्थापित हो पाता था तो वहाँ के नमक से होने वाली आय महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती थी। कृषि-उत्पादन पर एक बहुत बड़ी बंदिश पानी की कमी की वजह से लगती है, तो ऐसी विषम पर्यावरणीय परिस्थितियों का एक असर इलाक़े के जनसंख्या-घनत्व पर भी दिखाई देता है। कृषि की सीमित सम्भावनाएँ और पीने योग्य पानी की अनुपलब्धता ने इस इलाक़े में बसावट को विरल ही रखा है। सीमित जनसंख्या का प्रभाव मारवाड़ रियासत की नीतियों पर भी नज़र आ सकता है। अर्थात् सूखा पड़ने की स्थिति में इस इलाक़े से स्वाभाविक तौर पर पलायन होता रहा है। देखने में आता है कि रियासत अपनी तरफ़ से विशेष प्रयास करके किसानों और मज़दूरों को रोके रखने की चेष्टा करती थी। भू-राजस्व में छूट द्वारा राज्य की यह लगातार कोशिश रहती थी कि इलाक़े

[5] वही.
[6] वही.
[7] वही.

के निवासी पलायन न करें, बल्कि देखने में तो यह भी आता है कि मारवाड़ राज्य दूसरे इलाक़े से अपने इलाक़े में आ कर बसने के लिए किसानों को बहुत सी रियायतें देकर प्रोत्साहित करता था। यह बात मेरे तर्क को पुष्ट करने में काफ़ी सहायक होगी। इसकी चर्चा मैं आगे चल कर करूँगी कि मारवाड़ राज्य लगातार कोशिश करता था कि इस इलाक़े के निवासी पलायन न करें।

डाकण संबंधी अपने तर्कों और साक्ष्यों को साझा करने से पहले हमारे लिए ज़रूरी है कि तत्कालीन समाज की सामाजिक संरचना की भी संक्षेप में चर्चा कर ली जाए। यह इसलिए भी ज़रूरी है कि मुझे अपने अध्ययन में सिर्फ़ एक साक्ष्य डाकी यानी पुरुष डायन का मिला है, वरना बाक़ी सब जगह यह कुप्रथा स्त्री-केंद्रित ही नज़र आती है। यह बात कहने से पहले कि डाकण कुप्रथा का स्वरूप काफ़ी हद तक पितृसत्तात्मक समाज निर्धारित करता है, यह समझना ज़रूरी है कि किन अर्थों में श्रम (जनसंख्या) की सीमित उपलब्धता ने भी डाकण कुप्रथा के स्वरूप के निर्धारण में गहरी भूमिका निभाई है। समाज के पितृसत्तात्मक स्वरूप ने राजसत्ता के स्वरूप को भी प्रभावित किया है। अर्थात् रजवाड़ों में राज करने का अधिकार पिता से पुत्रों को तो स्वाभाविक रूप से मिल जाता था, पर उसमें पुत्रियों के अधिकारों का कोई स्थान नहीं होता था। राजपूताने में रियासत का स्वरूप इतिहासकारों ने आम तौर पर सामंती ही बताया है, जिसमें स्त्री को मात्र संतान उत्पन्न करने की वस्तु अथवा भोग की वस्तु माना गया है। अठारहवीं शताब्दी के मारवाड़ की रियासत को मुख्यतः सामंती संबंधों के आईने में देख कर समझा जा सकता है।

यहाँ यह उल्लेख करना भी ज़रूरी है कि अठारहवीं शताब्दी के समाज में शिशु-मृत्यु दर आम तौर पर काफ़ी ज़्यादा होती थी। आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अभाव में आम तौर पर ऐसी घटनाओं के लिए किसी मानवीय, दैविक अथवा प्राकृतिक कारक को ज़िम्मेदार ठहराया जाता था। शशांक शेखर सिन्हा ने अपने अध्ययन से यह स्थापित करने की कोशिश की है कि सामाजिक परम्पराओं को चुनौती देने वाली या पितृसत्तात्मक समाज के मूल्यों और अवधारणाओं के ख़िलाफ़ संघर्ष का माद्दा रखने वाली नारी को किस तरह से डाकण की श्रेणी में डाल दिया जाता था।[8]

कृषक और जनजातीय समुदायों में उत्पादन और प्रजनन को लेकर विभिन्न प्रकार की मान्यताएँ प्रचलित रही हैं। कृषि-उत्पादन और प्रजनन / यौनिकता से जुड़ी अनिश्चितताएँ न केवल राजस्थान और भारत में ही नहीं, बल्कि विश्व-भर में ग्रामीण समाज को प्रभावित करती रही हैं। हर समाज ने इस अनिश्चितता से निपटने के लिए अलग-अलग तरीक़ों का सहारा लिया है। ये धारणाएँ एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरित होती रही हैं। इनकी विविधता और निरंतर परिवर्तित रूपों को किसी एक व्याख्या के ज़रिये नहीं समझाया जा सकता। भिन्न-भिन्न समाजों में अलग-अलग तौर पर नारी की प्रजनन शक्ति और सेक्शुअलिटी को पूजा भी गया है, और उसके प्रति डर और घबराहट भी रही है। पितृसत्तात्मक समाज इसीलिए नारी की प्रजनन क्षमता और सेक्शुअलिटी को संयमित और नियंत्रित करने की लगातार चेष्टा करता रहा है। चूँकि डाकण वनस्पतियों और फसलों को भी हानि पहुँचाने वाली मानी जाती है, इसलिए प्रजनन और सेक्शुअलिटी वाला तर्क यहाँ भी लागू होता है।

पितृसत्तात्मक समाज में स्त्रियों से संबंधित इस अवधारणा के अपवादों से निपटने के लिए आम तौर पर स्त्री पर नकारात्मक चरित्र आरोपित किया गया है ताकि उसकी प्रजनन क्षमता को नियंत्रित किया जा सके। अठारहवीं शताब्दी के राजस्थान में चूँकि जनसंख्या हमेशा विरल रही है, इसलिए वहाँ पर नवजात शिशुओं की मृत्यु की कोई भी आकस्मिक वजह आमतौर पर इन्हीं अपवादित स्त्रियों पर डाकण के रूप में मढ़ दी जाती थी।

[8] शशांक शेखर सिन्हा (2015) : 105-120.

राजस्थान राज्य अभिलेखागार से मिलने वाले स्रोतों की विविधता के माध्यम से डाकण-उत्पीड़न के कई आयामों का अध्ययन किया जा सकता है। एक तरफ़ तो समाज की पितृसत्तात्मक सोच और देवी-पूजा का व्यापक प्रभाव है, वहीं पर दूसरी तरफ़ व्यवहार में स्त्रियों को डाकण घोषित करके नियंत्रित और प्रताड़ित किया जा रहा है। यही है वह अवधि जब मुग़लों के पतन के बाद मराठों के निरंतर होने वाले आक्रमणों और उनसे उत्पन्न अराजकता भी इस अध्ययन में एक नया आयाम पैदा करती है। लगातार युद्धों और उनसे जुड़ी विभीषिका ने भी सामाजिक ढाँचे को, ख़ासतौर पर स्त्रियों की स्थिति को प्रभावित किया होगा। अत: यह ज़रूरी हो जाता है कि डाकण की घटनाओं के माध्यम से हम तत्कालीन समाज का सांस्कृतिक और सामाजिक मूल्यांकन भी करें।

भीलवाड़ा में नंदू देवी बलई और उनका बेटा : नंदू देवी को डाकण बता कर सिर पर जूते रख कर चलने के लिए मजबूर किया गया.

सनद परवाना बहियों ... में स्वयं स्त्रियों द्वारा की गयी अपीलें प्राप्त होती हैं जिनमें अपने ऊपर हुई किसी भी ज़्यादती और अन्याय का विरोध करने की चेष्टा देखी जा सकती है। ... सामंती राज्य स्त्रियों को अपील करने का हक़ देता था, लेकिन यहाँ अहम यह है कि स्त्रियों द्वारा इस अधिकार का भी बख़ूबी इस्तेमाल किया जाता था।

जहाँ तक मध्यकाल में स्त्रियों की स्थिति से संबंधित स्रोतों का प्रश्न है, पुरुषों द्वारा लिखे गये इतिहास के कारण यह विषय उपेक्षित ही रहा। यदाकदा स्त्रियों की स्थिति बयान करते कुछ पुरुष-स्वर सुनाई पड़ जाते हैं, परंतु स्त्री के स्वर में उनकी संवेदनाओं का साक्ष्य हमें नहीं मिलता। अपरोक्ष रूप से स्त्री-दशा पर प्रकाश डालने वाली शोध-सामग्री बीकानेर के राजस्थान राज्य अभिलेखागार में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। मेरा यह शोध-पत्र इसी अभिलेखागार के जोधपुर बहियात सेक्शन में संगृहीत सनद परवाना बहियों के आधार पर तैयार किया गया है। इन बहियों में मध्यकालीन पश्चिमी राजस्थान में स्त्रियों के जीवन से संबंधित तथ्य हैं। सनद परवाना बहियाँ जनसाधारण द्वारा विभिन्न मुद्दों पर रियासत से की गयी अपीलें हैं। इनमें रियासत द्वारा दिये गये वे निर्णय अथवा आदेश संगृहीत हैं जिन्हें रियासत के कर्मचारियों द्वारा कचहरी में सुनवाई के दौरान लिपिबद्ध किया जाता था। इनसे हमें तत्कालीन समाज के संगठन संबंधी महत्त्वपूर्ण जानकारी भी प्राप्त होती है। ये बहियाँ वि.सं. 1825/1768 ई. से लेकर के वि.सं. 1858/1801 ई. तक की हैं। मेरे अध्ययन काल संबंधी कुल बहियों की संख्या 33 है। सनद परवाना बहियों से हमें स्त्रियों की स्थिति के बारे में मिलने वाली सूचनाएँ इसलिए महत्त्वपूर्ण हैं कि इतिहास में किसी अन्य स्रोतों में स्त्रियों की आवाज़ इतनी स्पष्टता से उभर कर सामने नहीं आती। यहाँ स्त्रियाँ मूकदर्शक या अबला नहीं है, बल्कि हमें इन बहियों में स्वयं स्त्रियों द्वारा की गयी अपीलें प्राप्त होती हैं जिनमें अपने ऊपर हुई किसी भी ज़्यादती और अन्याय का विरोध करने की चेष्टा देखी जा सकती है। यह सही है कि सामंती राज्य स्त्रियों को अपील करने का अधिकार देता था, लेकिन यहाँ अहम यह है कि स्त्रियों द्वारा इस अधिकार का भी बख़ूबी इस्तेमाल किया जाता था।

पश्चिम बंगाल के मिदनापुर में डाकण प्रथा के ख़िलाफ़ एक नुक्कड़ नाटक

राजस्थान के जनमानस में डाकण

जनमानस में डाकण की एक छवि बनी हुई है और इस छवि के चित्रण के लिए मैंने राजस्थान के जनमानस में डाकण से जुड़े संस्मरणों को साक्षात्कार[9] के माध्यम से जोड़ने का प्रयास किया है। राजस्थान के गाँवों में 25–30 वर्षों पूर्व तक प्रत्येक गाँव में एकाध डाकण के होने तथा उससे जुड़े हुए कई क़िस्से मिलते हैं। मेरे अध्ययन का काल अठारहवीं शताब्दी का मारवाड़ समाज (1750–1800) है और ये साक्षात्कार मैंने क़रीब 150 सालों के बाद के काल (1950–1980) के संबंध में लिए हैं। इसके बावजूद दोनों प्रकार के साक्ष्यों में कई प्रकार की समानताएँ नज़र आती हैं। गाँवों में बचपन से ही बालक-बालिकाओं को डाकण के नाम पर डराया जाता रहा है। ऐसा कहा जाता था कि दिन ढलने के बाद घर से बाहर निकलने पर डाकण उठाकर ले जाएगी और कलेजा निकाल कर खा जाएगी। राजस्थान के गाँवों में आज से दो-तीन दशक पहले जन्मी तथा पली-बढ़ी पीढ़ी के लोगों की डाकण के बारे में यादें आज भी ताज़ा हैं। गाँव में सब लोगों को डाकण के घर तथा गली की जानकारी अवश्य रहती थी। चाहे किसी ने डाकण को आँखों से देखा हो या नहीं, लेकिन उनके मन में बातें सुन-सुन कर डाकण की ऐसी छवि बन गयी थी जिससे लोग डरते थे। आमतौर पर अँधेरा होने के बाद गाँव में उस गली की तरफ़ कोई मुँह भी नहीं करता था।[10]

सवाल यह है कि गाँव में ऐसी कौन सी स्त्रियाँ होती थीं, जिन पर आम तौर पर डाकण होने का ठप्पा लगता था या लोगों को वहम हो जाता था कि फलाँ स्त्री डाकण है। विभिन्न स्रोतों के अध्ययन से कम से कम एक बात पर सहमति उभरती है कि ये स्त्रियाँ आम तौर पर गाँव में कमज़ोर सामाजिक

---

[9] जमुना देवी, उम्र 67 वर्ष, गाँव बींझबायला, तहसील पद्मपुर, जिला श्री गंगानगर, राजस्थान. अंकित बिश्नोई , उम्र 23 वर्ष, गाँव घमण्डिया, तहसील पद्मपुर, जिला श्री गंगानगर, राजस्थान. विद्या देवी, उम्र 65 वर्ष, गाँव मिरजेवाला, तहसील श्री गंगानगर, राजस्थान. कमला, उम्र 66 वर्ष, गाँव लिखमेवाला, रायसिंह नगर, राजस्थान.

[10] अंकित बिश्नोई द्वारा अपने गाँव घमण्डिया में बिश्नोई जाति की स्त्री का डाकण होना बताया है. अंकित ने अपने बालमन पर डाकण से जुड़ी स्मृतियाँ भी साझा कीं.

एवं आर्थिक पृष्ठभूमि वाले परिवारों की सदस्य होती थीं। ज़हूर ख़ाँ तथा रुस्तम भरूचा भी लिखते हैं कि डाकण प्राय: कमज़ोर जाति की स्त्रियाँ ही होती थीं। सामान्यत: बनिया, बाह्मण अथवा राजपूत जाति की स्त्रियाँ डाकण की श्रेणी में डाले जाने से बच जाती थीं। सनद परवाना बहियों से भी मिलने वाले साक्ष्यों से ऐसा नज़र आता है जिनमें बनिया जाति की केवल एक स्त्री को डाकण के रूप में चिह्नित किया गया था। डाकण के बाक़ी संदर्भ कमज़ोर जातियों की स्त्रियों से जुड़े हुए मिलते हैं। परिवार में पुरुष सदस्यों की अनुपस्थिति चाहे मृत्यु के कारण हो या फिर मज़दूरी आदि के लिए दूर-दराज़ चले जाने के कारण हो, ग़रीब परिवारों की स्त्रियों को डाकण बनाना आसान था। आमतौर पर ऐसी स्त्रियों पर डाकण की तोहमत लगाने की सम्भावना अधिक होती थी जो किसी न किसी तरह से दुर्बल स्थिति में थीं, जैसे बाँझ या विधवा होना।

स्त्री को डाकण क़रार दिये जाने का संबंध कहीं न कहीं उसके व्यक्तित्व से भी ताल्लुक़ रखता था। उदाहरणस्वरूप कुरूप चेहरा, बड़े-बड़े दाँत अथवा संकोचहीन बोल-बर्ताव। आम तौर पर आमने-सामने बहस करने वाली स्त्रियों को राजस्थान के पितृसत्तात्मक समाज ने कभी सहन नहीं किया। जहाँ तक ग्रामीण समाज में डाकण की पहचान का सवाल है, साक्षात्कारों से डाकण के स्वरूप का ऐसा चित्रण मिलता है जिसके अनुसार वह किसी सामान्य स्त्री-पुरुष की आँखों में आँखें डाल कर बात नहीं करती थी, और डाकण हमेशा गर्दन झुका कर चलने वाली मानी जाती थी। कहा जाता है कि किसी डाकण की आँखों में देखने पर उनमें सामने वाले व्यक्ति के पैर दिखाई देंगे, न कि चेहरा। एक मिसाल के अनुसार गोरा डाकण तो अपने घर से बाहर निकलने पर घूँघट निकाल कर चलती थी ताकि कोई उसकी आँखों में न देख पाए। इसी प्रकार कहा जाता है कि श्योकरी डाकण की आँखों में देखने पर कमला को अपने चेहरे के स्थान पर पैर ही दिखाई दिये थे।[11]

लोक-साहित्य तथा लोक प्रचलित कहानियों एवं कहावतों में भी हमें राजस्थान समाज में डाकण की अवधारणा को समझने में मदद मिलती है। राजस्थान के जनमानस में डाकण के अस्तित्व में इतना गहरा विश्वास था कि डाकणों के नाम पर लोग उनसे डरते भी रहे और उन्हें डराते-सताते भी रहे। रुस्तम भरूचा के अनुसार प्रत्येक गाँव में एकाध स्त्री ज़रूर डाकण होती थी। इन डाकणों को प्रसन्न रखने का हर सम्भव प्रयास किया जाता था। डाकण द्वारा की गयी किसी भी प्रकार की साधारण माँग, जैसे जल, भोज्य पदार्थों अथवा वस्त्र आदि को तुरंत पूरा किया जाता था ताकि वे प्रसन्न रहें तथा किसी को नुक़सान न पहुँचाए। पहली नज़र से देखने में यह एक विरोधाभास नज़र आता है कि डाकण की संकल्पना के केंद्र में स्त्री को रखा गया, वह स्त्री जो माँ के रूप में जन्म देने वाली शक्ति भी रखती थी, लेकिन डाकण के रूप में एक नज़र मात्र डालकर बच्चों की जान लेने के लिए काफ़ी थी। अनिश्चितताओं भरे समाज में ऐसे अंतर्विरोध प्राय: नज़र आते हैं।

डाकण के रूप में चिह्नित स्त्रियों को भी गाँव वालों के व्यवहार से देर-सवेर पता चल जाता था कि उन्हें डाकण समझा जा रहा है। लोग डाकणों से डरे हुए रहते थे और इसीलिए राजस्थानी में एक कहावत मिलती है 'डाकण नै मासी कै बतलावणी' अर्थात् डाकण को मौसी कह कर बुलाना चाहिए ताकि उसकी नाराज़गी न झेलनी पड़े। साक्षात्कारों से कुछ एक समान बातें निकल कर आयी हैं। इनके अनुसार सामान्य परिस्थितियों में डाकण को किसी भी कार्य या वस्तु के लिए न नहीं कहा जाता था। किसी भी चीज़ पर डाकण की नज़र पड़ने पर वह उसको दे दी जाती थी— उदाहरणस्वरूप डाकण आम तौर पर भोज्य पदार्थ, जैसे दूध, दही, सब्जियाँ अथवा वस्त्र इत्यादि पसंद आने पर माँग लेती थी। डाकण द्वारा किसी वस्तु की तारीफ़ करने पर भी उसे वह दे दी जाती थी। लेकिन गाँव में लोगों की कोशिश रहती थी कि उसकी नज़र बच्चों, दुधारू गाय-भैंस आदि पर न पड़े। डाकणों के

[11] जमुना देवी ने अपनी ननद की बेटी कमला तथा श्योकरी डाकण के आपसी वार्तालाप तथा व्यवहार के बारे में चर्चा की.

कई मामलों का अध्ययन करने के बाद ऐसा लगता है कि कभी-कभी गाँवों में जिन स्त्रियों को डाकण चिह्नित किया जाता था वे सीमित रूप में ही सही लेकिन डाकण होने के नाम पर गाँव वालों से अपने दैनिक जीवन-निर्वाह के छोटे-मोटे काम करवा लेती थी।

गाँव बींझबायला में श्योकरी डाकण[12] पूरे गाँव में घूमती रहती थी, जबकि गाँव में आमतौर पर स्त्रियाँ पड़ोस के दो-चार घरों को छोड़कर गाँव में दूर-दराज़ किसी के घर ख़ास अवसरों, जैसे मृत्यु, विवाह आदि पर ही जाती थीं। हालाँकि लोग चाहते नहीं थे कि डाकण किसी के घर में आये, परंतु इसके बावजूद उसका गाँव में घूमना उसकी दैनिक क्रियाओं में शामिल था। जमुना देवी प्रति वर्ष उसके लिए अपने मायके से सासू माँ के समान ही वस्त्र लाकर देती थी, क्योंकि गोरा द्वारा वैसे ही कुर्ती काँचली (ग्रामीण स्त्रियों द्वारा देह के ऊपरी हिस्से में पहना जाने वाला वस्त्र) की एक बार माँग की गयी थी। श्योकरी डाकण जाट जाति से थी पर अपनी जाति की अन्य स्त्रियों के समान उसका सामाजिक व्यवहार जातिगत नियमों में बँधा हुआ नहीं था। जमुना देवी के घरेलू काम करने वाली सुंदर मेघवाल जाति की स्त्री के घर पहुँच कर श्योकरी द्वारा मांसाहारी भोजन की माँग की जाती थी, जबकि जमुना देवी के घर से वह शाकाहारी पके हुए व्यंजनों की माँग करती थी या फिर दूध, छाछ आदि पदार्थों की। श्योकरी जाति-पाँति अथवा छुआछूत में विश्वास नहीं करती थी और वह गाँव में अनुसूचित जाति के नायक मेघवालों के घर जा कर उनका भोजन खाने से भी परहेज़ नहीं करती थी। श्योकरी सब्ज़ी व कुल्फ़ी वालों को डरा धमका कर, मार-पीट कर वस्तुएँ ले लेती थी। सम्भवत: ग्रामीण समाज में किसी स्त्री द्वारा इस प्रकार के व्यवहार करने से उसे डाकण की संकल्पना के लिए उपयुक्त पात्र मान लिया जाता था।

ऐसा प्रतीत होता है कि संकुचित रूप में ही सही, लेकिन डाकण-चिह्नित स्त्रियों द्वारा समाज के मन में डाकण के प्रति डर को इस्तेमाल भी किया जाता था, जैसा कि श्योकरी के मामले से स्पष्ट है। दूसरी तरफ़ डाकण-चिह्नित स्त्रियों को गाँव में बालक-बालिकाएँ भी प्रताड़ित करते थे। मसलन, गाँव गोलुवाला में सन् 1970 में सत्तर वर्ष की वृद्ध सजनी ढाढ़ण[13] (ढाढ़ी) जब गाँव में घर से बाहर निकलती थी तो बच्चे उसके पीछे पड़ जाते थे। वे उसे कच्चे-पक्के मिट्टी के ढेले मारते थे। इसी प्रकार जब भी गाँव में किसी के घर में शिशु की हालत बिगड़ने लगती या मृत्यु हो जाती तो सबकी शक़-भरी निगाह सजनी डाकण की तरफ़ उठती थी— शिशु की तबीयत बिगड़ने का कारण चाहे बीमारी अथवा चोट आदि जो भी रही हो। गोलुवाला गाँव में सजनी ढाढ़ी, गोरा जाटणी की माता, बींझबायला में श्योकरी जाटणी, मिरजेवाला में डोमा कुम्हारी डाकणों के रूप में चिह्नित थीं।

मेरे द्वारा साक्षात्कारों के दौरान सभी स्त्रियों-पुरुषों ने अपने बचपन की स्मृतियों के आधार पर अपने डाकण संबंधी विचार साझा किये थे। इन सब मामलों में कई समानताएँ नज़र आती हैं। प्रत्येक चिह्नित डाकण के साथ एक-दो बच्चों की मृत्यु को जोड़ कर देखा जाता था। गाँव वालों को विश्वास था कि अमुक डाकण ही उन बच्चों को खा गयी होगी। बच्चे की मृत्यु के दिन के आगे-पीछे डाकण को उसके आस-पास देखा जाना उसे शक के घेरे में ला देता था। कभी-कभी बच्चों की मृत्यु के पीछे चोट या बीमारी हुआ करती थी। गाँव बींझबायला में श्योकरी डाकण पर उसके पड़ोस के जाटों की बेटी रामेश्वरी की दो वर्षीय बेटी को मारने का आरोप था। जिस दिन शाम को इस बच्ची की मौत

---

[12] जमुना देवी द्वारा गाँव बींझबायला में श्योकरी डाकण से जुड़ी स्मृतियों के आधार पर.

[13] जमुना देवी, उम्र 67 वर्ष, गाँव बींझबायला, तहसील पद्मपुर, जिला श्री गंगानगर, राजस्थान. उन्होंने अपने मायके गोलुवाला की दो डाकणों सजनी ढाढ़ण तथा गोरा की माँ, जो कि एक जाट स्त्री थी, से जुड़ी स्मृतियाँ साझा कीं. जमुना देवी के ससुराल गाँव बींझबायला में इनके पड़ोस की जाट स्त्री श्योकरी पर गाँव वालों को डाकण होने का वहम था. आम तौर पर श्योकरी दो-चार दिन में इनके घर आती रहती थी तथा इनके खाने-पीने की वस्तुओं के साथ-साथ वस्त्र आदि भी ले जाती थी. गाँव वालों का श्योकरी पर पूरा शक था कि वह डाकण है. जमुना देवी ने दो-तीन बच्चों की मृत्यु के लिए श्योकरी को ज़िम्मेदार बताया.

भीलवाड़ा में माँगी देवी और पारसी देवी को डाकण बता कर लोहे की गर्म छड़ों से दागा गया.

हुई उस दिन सुबह उसे भैंस ने उठा कर पटक दिया था। असल में लड़की की मृत्यु चोट लगने से हुई, परंतु उसकी मृत्यु के पीछे आज भी रामेश्वरी के परिवार के लोग श्योकरी डाकण को ही मानते हैं। इसी प्रकार जब तक डाकण खाने-पीने की वस्तुएँ माँग कर ले जाती, लोग देते रहते थे, लेकिन जब उनके घर में ख़ास तौर से किसी बच्चे की बीमारी या मृत्यु होती, तो वे लोग गुस्से में आकर डाकण के साथ मारपीट करने लगते थे। जाटों ने छह महीने के एक लड़के की मृत्यु होने पर श्योकरी डाकण के पीट-पीट कर दाँत तोड़ दिये ताकि फिर से वह अपने आखर (मंत्र) न चला पाए। गाँव गोलुवाला में सजनी डाकण के बारे में हमें एक मर्मस्पर्शी वर्णन मिला। जब बच्चे उसके पीछे पड़ जाते और ढेलों से मारते, तो वह रोती हुई अपनी माँ और बेटी का नाम ले कर कहती थी कि परमी ने डाकण पैदा नहीं की और न ही गोरा की माँ डाकण है। मुझे मत मारो मैं डाकण नहीं हूँ। यह जानकारी मुझे अपने साक्षात्कार में जमुना देवी ने दी। ज़ाहिर है कि आज से क़रीब 40 से 50 वर्ष पूर्व तक गाँवों में स्त्रियों के डाकण होने के प्रति विश्वास और उसी विश्वास के तहत स्त्रियों के साथ किये जाने वाला दुर्व्यवहार आम बात थी।

डाकण के बाक़ी संदर्भ कमज़ोर जातियों की स्त्रियों से जुड़े हुए मिलते हैं। परिवार में पुरुष सदस्यों की अनुपस्थिति चाहे मृत्यु के कारण हो या फिर मज़दूरी आदि के लिए दूर-दराज़ चले जाने के कारण हो, ग़रीब परिवारों की स्त्रियों को डाकण बनाना आसान था। ऐसी स्त्रियों पर डाकण की तोहमत थोपने की सम्भावना अधिक होती थी जो किसी न किसी तरह से दुर्बल स्थिति में थीं, जैसे बाँझ या विधवा होना।

सामान्य स्त्री को डाकण बनाया जाना

ग्रामीण समाज में डाकण की अवधारणा से जुड़ी हुई अनेक श्रुतिकथाएँ एवं कहावतें प्राप्त होती हैं जिससे हमें एक सामान्य स्त्री से डाकण बनने की प्रक्रिया के बारे में जानकारी मिलती है। इतिहासकार एवं साहित्यकार ज़हूर ख़ाँ इस मान्यता के बारे में लिखते हैं कि प्रत्येक डाकण अपने जीवनकाल में एक सामान्य स्त्री को डाकण बनने की कला में पारंगत करती थी और उसे अपनी चेली बनाती थी। अगर किसी डाकण द्वारा पूरे जीवनकाल में यह कार्य नहीं किया जाता तो उसके शरीर से उस समय तक प्राण नहीं निकलते थे जब तक वह किसी स्त्री को अपने मंत्रों की दीक्षा न दे दे।[14] रुस्तम भरूचा लिखते हैं कभी-कभी किसी स्त्री द्वारा अनिच्छापूर्वक कुछ ऐसी क्रियाएँ हो जाती थीं जिससे वह

---

[14] विद्या देवी, उम्र 65 वर्ष, गाँव मिरजेवाला, तहसील श्री गंगानगर, राजस्थान द्वारा भी इसी प्रकार की डाकण से जुड़ी स्मृति साझा की गयी. उनके गाँव मिरजेवाला की डोमा कुम्हारी को गाँव के लोग डाकण कहते थे. डोमा ने अपनी मृत्यु का समय क़रीब आने पर गाँव वालों से प्रार्थना की कि कोई उससे मंत्रों की दीक्षा ले ले नहीं तो उसके शरीर से प्राण नहीं निकलेंगे. जब कोई भी मंत्रों की दीक्षा लेने के लिए तैयार नहीं हुआ तो उसने एक बाँस की झाड़ू मँगवाई तथा उसे अपने मंत्र सुनाए. डोमा की मृत्यु के बाद उस झाड़ू को जला दिया गया.

अनजाने ही डाकण की श्रेणी में आ जाती थी। जैसे किसी डाकण की मृत्यु के पश्चात् किसी सामान्य स्त्री द्वारा उसके पहने हुए वस्त्रों को प्रयुक्त करने पर वह अनचाहे में डाकण बन जाती थी। इसी प्रकार अगर किसी स्त्री के घर में कोई डाकण पहले से है तो उस घर की स्त्री पर डाकण होने की सम्भावना अधिक होती थी। उसके वंश की अन्य स्त्रियाँ विशेषकर उसकी बेटी भी डाकण बन जाती थी। अगर डाकण किसी सामान्य स्त्री को अपने डाकण बनने का वृत्तांत सुनाती है और वह सुनते समय हुंकारा अर्थात् स्वीकृति स्वरूप हाँ बोलते रहती है; और अगर अंत में डाकण कहे कि जैसी मैं हूँ वैसी तुम भी हो जाओ, और सामान्य स्त्री इस बात पर भी स्वीकृति स्वरूप हाँ बोल दे तो माना जाता था कि उस सामान्य स्त्री में भी डाकण की विशेष शक्तियाँ आ जाती थीं।[15]

डाकण के मंत्रों की दीक्षा मिलने के बाद सामान्य स्त्री से डाकण के स्वरूप परिवर्तन की असली प्रकिया शुरू होती थी। ज़हूर ख़ाँ [16] तथा अन्य साक्षात्कारों के आधार पर पता चलता है कि डाकणों के तीन स्तर थे— डाकण, सियारी और सिकोतरी। ये तीनों नामकरण डाकणों को उनकी कलाओं में निपुणता के अनुसार प्राप्त होते थे। डाकण यानी नयी नवेली डाकण जिसे कुछ समय पूर्व ही किसी पांरगत डाकण द्वारा चेली बना कर डाकण के मंत्र दिये गये होंगे। इन मंत्रों को ग्रामीण समाज में आखर या अखर कहा गया जिसका शाब्दिक अर्थ अक्षर है। ज़रूरी नहीं था कि सामान्य स्त्री डाकण के आखर मिलने के बाद सारी कलाएँ सीख जाए। डाकणों से जुड़ी अनके कहावतें राजस्थानी साहित्य में मिलती है जिसमें जरख तथा आखरों की चर्चा की गयी है। उदाहरण के लिए आखर ढायी आखणी, जरख बाहणी अर्थात् अढ़ाई अक्षर कहने वाली और जरख की सवारी करने वाली स्त्री डाकण होती है।[17] इसी प्रकार आखर की शक्ति पर कहा गया है कि 'सबद बिचारी सहज धरि खेलै, नाँव निरंतरि जागै' अर्थात् कई वर्ष आखर जपने के पश्चात् कोई-कोई डाकण मनुष्य रूप बदलने की कला सीख पाती थी।[18] माना जाता है कि डाकणों को अपनी कला में निपुणता प्राप्त करने के लिए आखरों को सिद्ध करना पड़ता था और उसके लिए उसे आधी रात में श्मशान भूमि में जाकर नग्न अवस्था में आकड़ें (राजस्थान में पाई जाने वाली एक झाड़ी) की पूजा करनी पड़ती थी। लोक-मान्यता है कि इसी समय डाकण जरख अर्थात् लकड़बग्घे की सवारी करती तथा पूरे गाँव में उड़ती-फिरती थी। इसी लिए लकड़बग्घे को 'डाकणीयौ रौ घोड़ो'[19] अर्थात् डाकण का घोड़ा भी बुलाया जाता है। यह भी कहा जाता है कि डाकण के घर में उसके आखरों की शक्ति से गेहूँ पीसने की चक्की अपने आप ही चलती रहती थी।[20]

डाकण के बाद सियारी डाकण[21] का नम्बर आता है जो कि लोमड़ी की तरह तेज़, चालाक एवं छुप कर शिक़ार करने में माहिर मानी जाती थी। सियारी इस बात पर नज़र रखती थी कि किस स्त्री को डाकण के आखर दिये जाने चाहिए। सियारी नवेली डाकण से ज़्यादा चालाक होती थी तथा जब वह अपने घर बैठे-बैठे आखर चलाती तो आस-पड़ोस के बिलौवणौ (मक्खन निकालने वाली दही की हाँडी) में से सारा मक्खन उसके बिलौवणौ में आ जाता था। सबसे अधिक निपुण डाकण, जो कि डाकण के सारे गुर जानती थी, सिकोतरी कहलाती थी। एक किंवदंती के अनुसार सिकोतरी डाकण में मानव शरीर से बिल्ली, चींटी इत्यादि में परिवर्तित होने की शक्तियाँ होती थीं जिसके कारण वह किसी सामान्य व्यक्ति की पकड़ में नहीं आ पाती थी।[22] मानव-शरीर से रूप परिवर्तन की कला के साथ-

---

[15] रुस्तम भरूचा, वही : 139.
[16] ज़हूर ख़ाँ मेहर (2018): 30-32.
[17] सीताराम लालस (1967), वही : 1865.
[18] वही.
[19] वही.
[20] ज़हूर ख़ाँ मेहर : 33-35.
[21] ज़हूर ख़ाँ मेहर (2018) : 33-35. साक्षात्कारों में भी इसी प्रकार की चर्चा मिलती है.
[22] जमुना देवी, विद्या देवी, कमला आदि के साक्षात्कारों द्वारा.

साथ सिकोतरी डाकण हज़ारों कोस दूर बैठी कहीं से भी बच्चे का कलेजा निकाल कर खा सकती थी। सिकोतरी डाकण के बारे में कहावत भी मिलती है 'डाकण नै मालवौ भाँ है' अर्थात् डाकण के लिए मालवा दूर नहीं है। कहा जाता है कि सिकोतरी डाकण शिशुओं की जान तो ले सकती थी, लेकिन वयस्क को केवल बीमार कर सकती थी। इसलिए डाकण कहती है, 'डाकणौ कूवौ तौ डाक लू समंद न डाक्यौ जाय, टाबर है तौ राख लूँ जौबन न राख्यौ जाय'[23] अर्थात् डाकण हूँ इसलिए छोटे बच्चे को तो रख लूँगी, लेकिन वयस्क को रखना मेरे बस की बात नहीं।

चूँकि समझा जाता था कि डाकण द्वारा आखर सिद्ध करने के बाद वह रूप बदल कर बिल्ली के रूप में गाँव में घूमती रहती थी, इसलिए ख़ास तौर पर शनिवार के दिन आने वाली काली बिल्ली पर नज़र रखी जाती थी। डाकण-बिल्ली को पहचानने के भी ख़ास तरीक़े की साक्षात्कारों में चर्चा की गयी। बिल्ली बनी हुई डाकण की आँखें आग उगलती हुई लाल, रंग एकदम काला स्याह तथा पूँछ सामान्य बिल्लियों से कम लम्बी होती थी।[24] डाकण को बिल्ली के रूप में आने के लिए चारपाई की दावण (पैरों की तरफ़ वाला रस्सी-गुँथा हिस्सा) में से सात बार निकलना पड़ता, और वापस स्त्री के रूप में आने के लिए वही क्रिया दोहरानी पड़ती।[25] डाकण अपने घर से बिल्ली बन कर निकलने से पहले घर के दरवाजे के आगे एक मिट्टी के बर्तन में पानी रखकर आती थी, क्योंकि जब वह बिल्ली के रूप में घर आती तो पहले उसी पानी में नहाकर घर में प्रवेश करती थी।[26]

आम तौर पर ऐसा माना जाता है कि शनिवार की रात्रि ही डाकण आती है। इसीलिए रविवार को कुछ अनहोनी घटित हो जाती तो ऐसे में गाँव वालों का पूरा शक डाकण पर ही होता था। अगर दो-तीन शनिवार लगातार किसी के घर, जहाँ अल्प आयु के शिशु हों, काली बिल्ली आ जाए तो लोग उस बिल्ली को डाकण ही समझते थे।[27] यह बिल्ली साधारण बिल्लियों के समान थोड़ा-बहुत डाँटने पर न डरती थी और न ही टस से मस होती थी। वैसे भी बिल्ली चालाक और समझदार जानवरों में शुमार होती है। शनिवार को काली बिल्ली आने पर लोग उसके शरीर पर लोहे के गर्म तीखे ताकलों से दागने की कोशिश करते ताकि जब डाकण मनुष्य रूप में आये तो स्पष्ट हो जाए कि यही बिल्ली बन कर घर में आयी थी।[28] वैसे तो लोग डाकणों से डरे रहते तथा उनकी छोटी-मोटी माँगों को पूरा करते रहते, लेकिन जब किसी परिवार में अल्पायु के बच्चे बीमार पड़ते अथवा उनकी मृत्यु हो जाती, तो वे कई बार डाकण के घर पहुँच जाते तथा उसके सामने बच्चे को ले जा कर प्रार्थना करते थे कि उसकी जान बख़्श दी जाए।[29] कभी-कभी कोई बीमार बच्चा ठीक भी हो जाता था। कई बार बच्चों की मृत्यु होने पर डाकणों के साथ मार पीट भी की जाती थी। कभी-कभी यह कोशिश की जाती कि डाकण के दाँत तोड़ दिये जाएँ ताकि फिर से किसी बच्चे पर इसके आखर शक्तिहीन हो कर न चल सकें।[30] आमतौर पर जितने भी लोगों के साक्षात्कार लिये गये, प्रत्येक ने डाकण से एक बच्चे की मृत्यु का क़िस्सा अवश्य जुड़ा हुआ बताया गया था।

सनद परवाना बहियों में डाकण

अठारहवीं शताब्दी के मारवाड़ समाज में डाकण की अवधारणा समझने के लिए कुछ ऐतिहासिक स्रोतों से प्राप्त साक्ष्य नीचे दिये जा रहे हैं। इससे मारवाड़ प्रदेश में प्रचलित डाकण संबंधी अवधारणा

---

[23] सीताराम लालस : 1370.

[24] बिल्ली बनी हुई डाकण को पहचानने के सारे चिह्न जमुना देवी द्वारा बताए गये.

[25] जमुना देवी.

[26] चंदूराम जाट, उम्र 55 वर्ष, गाँव गोलुवाला, श्री गंगानगर, राजस्थान.

[27] सभी साक्षात्कारों में काली बिल्ली का शनिवार के दिन घर में आना अशुभ तथा डाकण का आना माना गया.

[28] जमुना देवी.

[29] जमुना देवी, विद्या देवी, कमला आदि ने अपने गाँवों में होने वाले डाकणों के साथ बर्ताव की स्मृतियों को साझा किया.

[30] ज़हूर ख़ाँ मेहर (2018) : 34. तथा तमाम साक्षात्कारों में भी समान प्रकार के विचार मिलते हैं.

को समझने में सहायता मिल सकती है :

तथा परगना नागौर में खण्डेलवाल देवे अठै आयने कयो श्री हुजूर में अरज मालम कराई। नाई खुस्याला री बहु डाकण है सु दोय टाबर तो म्हाँरा लीया ने टाबर दस ईग्यारे के खण्डेलवाल गूली महाजन लिखमा रूघा री भाणजी गुमाना रा डावड़ा बग़ैरे लीया सु हुक्म हुवो है इतरा टाबर उण लीया हुवै तीण री तैहतीक पोहती हुवै तरै सेहर बारे खुस्याला री बउ नु काढ़ देजो ने और तरै हुवै तो पाछी हकीकत लिखजो।[31] (सन् 1778)

(परगना नागौर में देवे खण्डेलवाल द्वारा श्री हुज़ूर को अपील की गयी जिसके अनुसार नाई खुस्याला की पत्नी डाकण है तथा उसने दो बच्चे तो मेरे लिए और दस बारह बच्चे खण्डेलवाल जाति के ही गूली महाजन, लिखमा, रूघा की भानजी, गुमाना के दो लड़के आदि लिए हैं। श्री हुज़ूर द्वारा नाई खुस्याला की पत्नी द्वारा इतने बच्चे लेने तथा डाकण होने की तहक़ीक़ात पहुँचती हो तो खुस्याला की बहू को शहर से बाहर निकालने का आदेश दिया गया।)

तथा परगना देसुरी में गाँव चाणोद री भगतण रूपाई श्री हुज़ूर में अरज मालम कराई म्हारे जेठ सावलदास मोनु डाँकण कही जे मोनु न म्हारा डावड़ा नु घर बारै काढ़ दियो सु हु हमार म्हारे पीर गाँव चाँदेलाव रउ छु सु उठे पीणं साँवलदास कवाय मेलीयो है ईण नु गाँव में राखजो मती आ डांकण है सु हुक्म हुवो है ईण री ठीक चोकस कर ने ईण नु ग़ैर वाजबी घर म्हासु काढ़ी हुवे ईण रा घर ईण नु दीराय देजो।[32] (सन् 1780)

(परगना देसुरी के गाँव चाणोद की भगत जाति की स्त्री रूपाई द्वारा श्री हुज़ूर से अपील की गयी जिसके अनुसार उसके जेठ साँवलदास ने उसको डाकण कह कर उसको तथा उसके बेटे को घर से बाहर निकाल दिया। इसलिए वह अपने मायके के गाँव चाँदेलाव में रह रही है, लेकिन साँवलदास ने यहाँ भी समाचार भिजवाया है कि इसको गाँव में मत रखना, ये डाकण है। श्री हुज़ूर द्वारा रूपाई की अपील पर आदेश दिया कि अगर इसे अनुचित ही घर से निकाला है तो इसका घर इसे दिलवाया जाए।)

परगना परबतसर में गाँव थावला के ढोली धनीये अठे आयने कयो म्हारी लुगाई नु गाँव रा लोग ने गुज़रा डाकण रो झुठो बहानो देने म्हानु गाँव बारै काढ़ दीया है सु ईणा नु हकनाफ झुठो बाहानो देने काढ़ दीया हुवै तो पाछा बसाय देजो ने गुज़रा नु माकुल करजो। आडी ओल फेर ईण जाब बाबत अे अठे आवे नहीं।[33] (सन् 1777)

(परगना परबतसर के गाँव थावला के ढोली जाति के धनीये द्वारा अपील की गयी जिसके अनुसार उसकी पत्नी पर गाँव के लोगों तथा गुर्ज़रों ने डाकण होने का झूठा आरोप लगाकर गाँव से बाहर निकाल दिया है। धनीये की अपील की सुनवाई पर श्री हुज़ूर द्वारा आदेश दिया गया कि अगर धनीये की पत्नी पर झूठा आरोप लगाया गया हो तो इन्हें वापिस गाँव में बसा दिया जाए तथा गुर्ज़रों के विरुद्ध कार्रवाई की जाए।)

परगना परबतसर में गाँव जावला में तेलण दानसा री बैन तिण नै न्यात रा डाँकण री झूठी तोहमत दीवी तरै थे कचैड़ी बुलाय ने कोरड़ा सु कुटाई पछै किणी कयो लुगाई री जात नु कोरड़ा सु कुटवाणी दुरस नहीं तरै थे आदमीयाँ नु कयो बिना कया कोरड़ा सु क्यु कुटी हमें ईण नु सीख दो तरे तेलण कयो डाकण छू तो म्हारो माथा काटा नाखो नहीं तर न्याव करो तरे थे बीना नीस तुक कीया सीख दीवी सु इण रो जाब साल कर नीस तुक क्यू पाड़ो नहीं तिण रो जाब लिखजो ने कोरड़ा मारण में आदमी था जीणा रा नाँव लिखजो।[34] (सन् 1773)

(यह आदेश दरबार द्वारा कचहरी में नियुक्त कर्मचारियों को दिया गया कि डाकण के मामले को कचहरी द्वारा किस प्रकार से सँभाला जाना चाहिए था। इस आदेश के अनुसार परगना परबतसर में गाँव जावला के दानसा तेली की बहन पर तेली जाति के लोगों द्वारा डाकण होने का झूठा आरोप की शिक़ायत कचहरी में लगाई गयी थी। इसी शिक़ायत के तहत दानसा की बहन को कचहरी में बुलाया गया तथा उसकी कोड़े से पिटाई की गयी। जब इधर-उधर लोगों में अपने कर्मचारियों की इस हरकत के बारे में चर्चा शुरू हो गयी कि एक स्त्री को कोड़ों से पिटवाना उचित नहीं। तब जाकर अधीनस्थों से कहकर तेलण को घर जाने दिया। तेलण द्वारा कचहरी में बंद करने, कोड़ों से पिटाई के ख़िलाफ़ क्षुब्ध होकर कहा अगर मैं डाकण हूँ तो मेरा सिर काट डालो नहीं तो मेरे साथ न्याय किया जाए। इस पर तेलण के मामले की जाँच-पड़ताल किये बिना तुमने तेलण को क्यों जाने दिया। तेलण के मामले में सवाल-जवाब के साथ पूरी जाँच-पड़ताल क्यों नहीं की गयी। तेलण को कोड़े मारने में जो आदमी लिप्त था, उसका नाम लिखकर भेजा जाए।)

---

[31] *सनद परवाना बही* सं. 20, वि.सं. 1835/1778 ई.

[32] *सनद परवाना बही* सं. 24, वि.सं. 1837/1780 ई.

[33] *सनद परवाना बही* सं. 18, वि.सं. 1834/1777 ई.

[34] *सनद परवाना बही* सं. 13, वि.सं. 1830/1773 ई.

परगना देसुरी में गाँव सारगबाड़ी के सीरवी टीकम री माँ ने सीरवी दोले डाकण कही। तरै टीकमा री माँ री आख्या में मिरचा घाली सु साँची हुई। सु दोला रे तलब कीवी थी सु बिना गुनहगारी उठ तरफ़ कर दीवी। बिना गुनैगारी उठतरीयाँ क्यू कीवी हमें गुनैगारीया भराय लेजो।[35] (सन् 1801)

(परगना देसुरी में गाँव सारगबाड़ी के सीरवी टीकम की माँ पर सीरवी जाति के ही दोले ने डाकण होने का आरोप लगाया। टीकम की माँ की धीज (परीक्षा) करवाई गयी तथा आँखों में मिर्च डाली गयी। टीकम की माँ की धीज में निर्दोषिता साबित हुई और दोले पर कार्यवाही करने का आदेश दिया गया, लेकिन आर्थिक दण्ड लिए बिना ही दोले से तलब क्यों उठा दी गयी।)

तथा जोधपुर के गाँव मतोड़ा री कुम्भारी अठे कयो म्होने वीठवासीया रे कुम्भार पेमले राम लीड़े डाकण री झुठी तोहमत देने मारी छै आ हकीकत श्री हुजूर मालुम हुई सु हुक्म हुवौ छै ईण री हक़ीक़त पूछ ठीक कर वाजबी हुवै जीण माकूल कीजो श्री हुज़ूर रो हुक्म छै।[36] (सन 1768)

(परगना जोधपुर के गाँव मतोड़ा की कुम्हार जाति की स्त्री पर गाँव वीठवासीया के कुम्हार पेमले राम ने डाकण होने की तोहमत लगाई तथा उसे गर्म लोहे से दाग दिया। श्री हुज़ूर द्वारा कुम्हारी के डाकण के मामले की जाँच पड़ताल करने तथा उचित हो वैसे करने का आदेश दिया गया।)

तथा सिखणं कायली अठै श्री हुज़ूर मालम कराई मोने डाकण चौ. मनोहर, लालै, आसै ठहराई ने कहो मीनी नु माँटा मैं लालै घाली ने कहो मीनी रै डाब दे सु ईण रै उघड़सी सु म्हारै तो डाब कोई उघड़ीयो नहीं सु हुक्म हुवो है ईण री ठीक करने कुड़ा हुवे तीण सु माकुल करजो ने वाजबी समझाय देवो।[37] (सन् 1780)

(सिख जाति की कायली नामक स्त्री द्वारा दरबार में अपील की गयी जिसके अनुसार चौधरी मनोहर, लालै, आसै ने उस पर डाकण होने का आरोप लगाया तथा उसे मिट्टी में दबा कर गर्म लोहे से दाग लगा दिया। लेकिन उसके अनुसार उसके दाग ज़ाहिर नहीं हुआ तथा उसकी निर्दोषिता साबित हुई। श्री हुज़ूर द्वारा आदेश दिया गया कि इस कायली के मामले की जाँच पड़ताल की जाए तथा जो भी झूठा साबित हो उस पर कार्यवाही की जाए।)

उपर दिये गये ऐतिहासिक स्रोतों से एक बात साफ़ होती है कि मारवाड़ के समाज एवं रियासत को स्त्रियों के डाकण होने संबंधी मान्यता में विश्वास था। कचहरी में अपील भी श्री हुज़ूर यानी राजा के नाम पर की जाती थी, और फैसला सुनाने वाला हाक़िम भी श्री हुज़ूर के नाम पर निर्णय देता था।

मारवाड़ के समाज में डाकण के ऐतिहासिक स्वरूप को समझने के लिए इसे दो भागों में विभाजित कर रही हूँ। पहले भाग में मारवाड़ के समाज में स्त्रियों को डाकण के रूप में चिह्नित करने तथा उनके साथ किये जाने वाले व्यवहार की चर्चा की जाएगी। दूसरे भाग में इस मुद्दे पर प्रकाश डाला जाएगा कि मारवाड़ रियासत डाकण के मुद्दे को किस प्रकार सँभालता था, तथा डाकण-चिह्नित स्त्रियों तथा उनको डाकण चिह्नित करने वाले लोगों के प्रति क्या दृष्टिकोण था।

डाकण-चिह्नित करने की प्रक्रिया

यहाँ जिस मध्यकालीन मारवाड़ की चर्चा की जा रही है, वह मुख्यत खेतिहर ग्रामीण समाज था। ग्रामीण समाज में कृषक एवं कारीगर जातियों की स्त्रियों को घर से बाहर विभिन्न कामों के लिए निकलना आम बात थी। इन्हें दैनिक कार्य-कलापों, जैसे पानी भरने, खेती में पुरुषों का हाथ बँटाने आदि से लेकर विभिन्न व्यावसायिक कार्यों से भी घर से बाहर आना-जाना पड़ता था। इसी प्रकार कमज़ोर जातियों की कई स्त्रियाँ ऊँची जातियों के यहाँ घरेलू काम, जैसे पानी भरना आदि भी करती थीं। भोजन बनाने के लिए मेहरा जाति, सब्ज़ी बेचने के लिए माली, मिट्टी के बर्तन बेचने के लिए कुम्हार जाति, घरेलू उपयोग की वस्तुओं के लिए खाती, लुहार आदि जातियों की स्त्रियाँ गाँवों में घर-घर जा कर अपना सामान बेचती थीं। समाज में आर्थिक एवं राजनीतिक रूप से सक्षम व्यक्तियों से इन स्त्रियों की किसी बात पर असहमति या उनकी नाराज़गी का नतीजा उन पर डाकण के ठप्पे के रूप

[35] *सनद परवाना बही* सं. 55, वि.सं. 1858/1801 ई.

[36] *सनद परवाना बही* सं. 8, वि.सं. 1825/1768 ई.

[37] *सनद परवाना बही* सं. 24, वि.सं. 1837/1780 ई.

में सामने आता है।

हमें ऐतिहासिक स्रोतों, साहित्यिक स्रोतों तथा विभिन्न साक्षात्कारों से एक सहमति नज़र आती है जिसके अनुसार आम तौर पर डाकण कमज़ोर जाति की स्त्रियाँ ही होती थीं। सामान्यतः कुम्हार, नाई, ढाढ़ी, जाट, तेली, माली, भगत, रैबारी आदि जातियों की स्त्रियों को डाकण क़रार दिया जाता था। सम्भवतः इसके पीछे मुख्य कारण अधिकांशतः उच्च जातियों के सहयोग अथवा उनके द्वारा ही स्त्रियों को डाकण चिह्नित किया जाना हो सकता था। राजस्थानी भाषा में डाकण पर एक मशहूर कहावत भी है कि 'अपनी माँ नै कूण डाकण कैवे' अर्थात् अपनी घर की स्त्री (पत्नी अथवा माँ) को कौन डाकण कहेगा। उच्च जातियों की स्त्रियों का डाकण होना अपवादस्वरूप ही मिलता है। इसी प्रकार 1780 ई. में परगना सोजत के गाँव सिरिया के महाजन बिजै की पत्नी पर गाँव के जागीरदार, कामदार तथा महाजन जाति के ही जतीया तथा कुछ लोगों द्वारा मिल कर डाकण होने का आरोप लगाया गया।[38] इस मामले को हम अपवाद के रूप में देख सकते हैं। कमज़ोर जाति की स्त्रियों को डाकण चिह्नित करने वाला मुख्य रूप से मारवाड़ पुरुष प्रधान समाज था जिसका संबंध आम तौर से ऊँची जातियों से था। लेकिन डाकण के कई मामलों में कमज़ोर जाति के पुरुषों द्वारा भी स्त्रियों को डाकण चिह्नित किया गया। पुरुष को डाकण चिह्नित करने का एक मामला अपवादस्वरूप मिलता है। 1780 ई. में गाँव धाकड़ी के सीरवी जाति के मैहे तथा उसकी पत्नी दोनों को ही डाकण-डाकी घोषित कर दिया गया।[39] कभी-कभी किसी ऐसी स्त्री द्वारा भी किसी स्त्री को डाकण चिह्नित किया जाता था जो कि स्वयं भी जाति के पंच/मुखिया आदि की पत्नी होने के नाते गाँव में शक्तिशाली स्थिति रखती थी। 1778 ई. में परगना मेड़ता की खाती जाति की स्त्री को चौधरी गीधा की पत्नी द्वारा डाकण चिह्नित किया गया।[40]

सामान्यतः ऐतिहासिक स्रोतों में मारवाड़ समाज में स्त्री पर डाकण होने का ठप्पा उसके परिवार, जाति, गाँव के पुरुषों द्वारा लगाए जाने के साक्ष्य प्राप्त होते हैं। मारवाड़ के समाज में स्त्री के परिवार से ही किसी सदस्य द्वारा जब स्त्री को डाकण चिह्नित कर दिया जाता तो उसके लिए गाँव में जीवन-निर्वाह मुश्किल हो जाता था और गाँव छोड़ कर जाने के अलावा कोई रास्ता नहीं बचता था। इस प्रकार के मामलों में स्त्री के देवर या जेठ का मक़सद उसका घर, ज़मीन आदि हथियाना होता था। परगना देसुरी के गाँव चाणोद की भगत जाति की स्त्री रूपाई को उसके जेठ साँवलदास[41] तथा गाँव सोनेई की माली जाति की स्त्री को उसके देवर कचरियो ने डाकण चिह्नित कर दिया।[42] जब रूपाई अपने अल्पायु बच्चे को ले कर मायके जा कर रहने लगी तो साँवलदास ने उसके पीहर में रूपाई के डाकण होने का समाचार भिजवाया तथा कहा कि उसे गाँव से बाहर निकाल दिया जाए। साँवलदास तथा कचरियो ने इन स्त्रियों के घर छीन लिए तथा उन्हें गाँव से निष्कासित करवा दिया। अगर गाँव में किसी व्यक्ति द्वारा स्त्री को डाकण कहना शुरू कर दिया जाता और उसके बाद समस्त गाँव भी उसे कलंकित करता तो नतीजा उसके सामूहिक बहिष्कार में निकलता था।

परगना मेड़ता की कचहरी में खाती जाति की स्त्री द्वारा अपील की गयी। इसके अनुसार चौधरी गीधा की पत्नी ने जब से उसे डाकण कहा तभी से उसके देखा-देखी सारा गाँव ही उसे

[38] *सनद परवाना बही* सं. 24, वि.सं. 1837/1780 ई.
[39] *सनद परवाना बही* सं. 24, वि.सं. 1837/1780 ई.
[40] *सनद परवाना बही* सं. 20, वि.सं. 1835/1778 ई.
[41] *सनद परवाना बही* सं. 20, वि.सं. 1835/1778 ई.
[42] *सनद परवाना बही* सं. 18, वि.सं. 1834/1777 ई.

डाकण–डाकण कहने लगा।[43] परगना मेड़ता में गाँव जालसु के जाट माना की पत्नी को जाट देवले ने डाकण कहना शुरू किया।[44] परगना परबतसर में गाँव थावला के ढोली धनीये की पत्नी पर गाँव के गुर्ज़र जाति के लोगों द्वारा डाकण होने का आरोप लगाया गया।[45] परगना जैतारण के मालिन मठुड़ी पर मालियों के मेहतर (मुखिया) बाघले द्वारा डाकण होने का आरोप लगाया गया। इसके विरोध में मठुड़ी द्वारा रियासत के दरबार में अपील की गयी जिसके अनुसार माली जाति के मेहतर (मुखिया) बाघले ने उससे द्वेषभाव से प्रेरित होकर उस पर डाकण होने का आरोप लगाकर न्यात (जाति) से बाहर निकाल दिया, तथा अब उसे अपने बेटे के साथ नहीं रहने दिया जा रहा।[46] परगना सोजत के गाँव सीरीयारी के मोची समरथ की माँ पर मोची दले द्वारा डाकण होने का आरोप लगाया गया।[47]

डाकण चिह्नित की गयी स्त्रियों व उनके परिवार को आर्थिक नुक़सान तो होता ही था, समाज में भी उनकी सामाजिक स्थिति पर विपरीत असर पड़ता था। उनकी संतानों के रिश्ते टूट जाते थे। गाँव धाकड़ी के सीरवी मेहे तथा उसकी पत्नी द्वारा कचहरी में अपील की गयी, जिसके अनुसार उनके विरोधियों के कहने पर कचहरी द्वारा उन पर डाकण तथा डाकी का आरोप लगाकर उन पर 80 रुपये गुनहगारी लगाई गयी। मेहे तथा उसकी पत्नी पर लगाए गये आरोप के कारण उनके बच्चों की सगाई टूट गयी।[48]

मारवाड़ में स्त्रियों को डाकण के रूप में चिह्नित करने का कार्य अधिकांशत: रियासत के कर्मचारियों[49] द्वारा किया गया। इन मामलों में गाँव वालों द्वारा इनके पास डाकण के बाबत शिकायत भी नहीं की गयी थी, लेकिन उनकी तरफ़ से अपने आप ऐसा किया गया। स्त्रियों को डाकण चिह्नित करने वालों में विभिन्न गाँवों के चौधरी, जागीरदार, भोमिया तथा जागीरदार के कारिंदे शामिल थे। समाज में ये व्यक्ति न केवल स्वयं उच्च जाति से थे, बल्कि दिन–प्रतिदिन की राजनीति एवं समाज में शक्ति–संबंधों को नियंत्रित करने में इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती थी। इन लोगों द्वारा कमज़ोर जाति की स्त्रियों को डाकण घोषित करके न केवल उनके आर्थिक संसाधनों पर अधिकार कर लिया गया अपितु उन्हें प्रताड़ित करने का माध्यम बना लिया गया। स्पष्टत: इस प्रकार की कार्यवाही न केवल आर्थिक लाभ से प्रेरित होती थी, बल्कि इसके पीछे ईर्ष्या, द्वेष जैसे भाव भी निहित होते थे। इस तरह के सबूत मिलते हैं कि मारवाड़ रियासत के कर्मचारियों द्वारा स्त्रियों को डाकण चिह्नित कर उनसे आर्थिक लाभ उठाए गये। डाकण के नाम पर डरा धमका कर स्त्रियों से मवेशी, घर, खेत आदि सम्पत्ति हड़प ली गयी। 1770 ई. में परगना सोजत के गाँव आलावास के जाट मनीये द्वारा राज दरबार में अपील की गयी जिसके अनुसार गाँव में रहते हुए उसे छह वर्ष हो गये परंतु अब जागीरदार द्वारा उसकी पत्नी पर डाकण होने का तोहमत लगाकर उसके 3 बैल, 1 टोघड़ी (बछड़ी), 1 गाय तथा 4 गाडे (ऊँट के पीछे जोती जाने वाली गाड़ी) और चारा लूट लिया गया।[50] इसी प्रकार 1776 ई. में गाँव

---

[43] *सनद परवाना बही* सं. 14, वि.सं. 1831/1774 ई.
[44] *सनद परवाना बही* सं. 14, वि.सं. 1831/1774 ई.
[45] *सनद परवाना बही* सं. 10, वि.सं. 1827/1770 ई.
[46] सनद परवाना बही सं. 20, वि.सं. 1835/1778 ई.
[47] *सनद परवाना बही* सं. 21, वि.सं. 1836/1779 ई.
[48] *सनद परवाना बही* सं. 25, वि.सं. 1838/1781 ई.
[49] सन् 1786 में परगना नागौर के गाँव सीघाणी के जाट अणदीये की पत्नी को गाँव के जागीरदार द्वारा डाकण चिह्नित किया गया, *सनद परवाना बही* सं. 34, वि.सं. 1843/1786 ई. सन् 1770 ई. में परगना जैतारण के गाँव खरै के तेली सवाई की माँ पर डाकण होने का आरोप गाँव के जागीरदार द्वारा लगाया गया, *सनद परवाना बही* सं. 10, वि.सं. 1827/1770 ई. सन् 1770 ई. में परगना सोजत के गाँव आलावास के जाट जाति के मनीये की पत्नी पर जागीरदार द्वारा डाकण होने का इलजाम लगाया गया, *सनद परवाना बही* सं. 10, वि.सं. 1827/1770 ई. सन् 1786 ई. गाँव हिगोंला की कुम्हार जाति की स्त्री अमरी पर गाँव के भोमिये सुरतसिंघ द्वारा डाकण होने की तोहमत लगाई गयी, *सनद परवाना बही* सं. 34, वि.सं. 1843/1786 ई. सन् 1773 ई. में गाँव वलाडा के कुम्हार जाति के पुरुष दलीये की पत्नी पर गाँव के जागीरदार द्वारा डाकण होने का आरोप लगाया गया, सनद परवाना बही सं. 10, वि.सं. 1827/1770 ई.
[50] *सनद परवाना बही* सं. 10, वि.सं. 1827/1770 ई.

सीरीया के जाट रामा की पत्नी द्वारा दरबार में अपील की गयी जिसके अनुसार जागीरदार के आदमी द्वारा उस पर डाकण होने का इलजाम लगाकर उससे रुपये की माँग की गयी।[51] इसी प्रकार 1773 ई. में परगना जैतारण के गाँव खरै के तेली जाति के व्यक्ति सवाई द्वारा रियासत में अपील की गयी जिसके अनुसार गाँव के जागीरदार द्वारा उसकी माँ पर डाकण होने का आरोप लगाकर उसका घर छीन लिया गया।[52]

मारवाड़ राज्य के कर्मचारियों द्वारा स्त्रियों तथा उनके परिवार का डाकण के नाम पर आर्थिक शोषण ही नहीं, बल्कि स्त्रियों पर शारीरिक अत्याचार भी किये जाते थे। इसी कारण से कमज़ोर जातियों की स्त्रियों में रियासत के कर्मचारियों तथा डाकण के नाम पर डर बैठ गया था। हमें बहियों में स्त्रियों को प्रताड़ित करने के विभिन्न उदाहरण मिलते है। भोमिया सुरतसिंघ द्वारा गाँव हिंगांला की कुम्हार जाति की स्त्री अमरी पर डाकण होने की तोहमत लगाकर उसकी पिटाई की गयी।[53] इसी प्रकार गाँव वलाडा के कुम्हार दलीया की पत्नी के साथ जागीरदार के कामदार द्वारा डाकण होने के कारण मारपीट की गयी।[54] स्त्रियों पर रियासत के कर्मचारियों द्वारा डाकण के नाम पर की जाने वाली क्रूरता कभी-कभी इतनी बढ़ जाती थी कि वे आत्महत्या तक कर लेती थी। 1770 में गाँव वलाडा के कुम्हार दलीये की पत्नी पर जागीरदार द्वारा डाकण होने का आरोप लगाया गया और दोनों की पिटाई की गयी जिससे दलीये का हाथ टूट गया। दलीये की पत्नी जब मारपीट सहन न कर पाई, तो उसने कुएँ में कूद कर आत्महत्या कर ली।[55]

रियासत के कर्मचारियों द्वारा स्त्रियों पर डाकण होने के संदेह के आधार पर ही स्त्री-विशेष को डाकण प्रमाणित होने से पूर्व ही गाँव से बाहर निकाल दिया जाता था। उसकी पारिवारिक सम्पत्ति को भी जब्त कर लिया जाता था। ऐसे में कभी-कभी उनके पति को भी साथ ही गाँव से बाहर निकालने के प्रयास भी रियासत के कर्मचारियों द्वारा किये जाते थे। परगना सोजत के गाँव सीरीया के जागीरदार के कामदार और महाजन जतीया आदि ने इकट्ठे हो कर महाजन बिजा की पत्नी पर डाकण होने का आरोप लगाया तथा उसे गाँव से बाहर निकाल दिया। अपनी पत्नी को गाँव से बाहर निकालने के विरोध में बिजा ने अपने बच्चों के साथ सोजत की कचहरी में अपील की।[56] परगना परबतसर में गाँव थावला के ढोली जाति के पुरुष धनीये की पत्नी पर गुर्ज़र जाति के लोगों द्वारा डाकण होने की तोहमत लगा कर उसे और उसकी पत्नी को गाँव से बाहर निकाल दिया गया।[57] परगना नागौर के गाँव सीघाणी के जाट जाति के व्यक्ति अणदीये की पत्नी पर डाकण होने का इलजाम गाँव के जागीरदार द्वारा लगाया गया। डाकण घोषित करने के बाद उसे गाँव से बाहर निकालने के प्रयास किये गये। इसके विरोध में अणदिये तथा उसकी पत्नी द्वारा राजदरबार की कचहरी में अपील की गयी। इस केस की सनद परवाना बही में लगातार तीन संदर्भ प्राप्त होते हैं जिनमें तीन बार अपील की गयी तथा सुनवाई हुई। तीनों अपीलों की सुनवाई के बाद श्री हुजूर द्वारा तीनों बार समान आदेश दिये गये कि अगर अणदीये की पत्नी का डाकण होना प्रमाणित हो जाता है तो उसे गाँव से बाहर निकाल दिया जाए तथा अगर यह सच साबित नहीं होता है तो अणदीये और उसकी पत्नी को गाँव में रहने दिया जाए और उन्हें उनकी पुश्तैनी ज़मीन तथा घर सौंप दिया जाए। दुर्भाग्य से स्रोतों के अभाव में यह नहीं पता लगाया जा सकता कि इस मामले में अंततः क्या हुआ। क्या अणदीये को न्याय मिला या गाँव के सम्पन्न लोगों का अत्याचार कामयाब

[51] *सनद परवाना बही* सं. 17, वि.सं. 1833/1776 ई.
[52] *सनद परवाना बही* सं. 13, वि.सं. 1830/1773 ई.
[53] *सनद परवाना बही* सं. 13, वि.सं. 1830/1773 ई.
[54] *सनद परवाना बही* सं. 34, वि.सं. 1843/1786 ई.
[55] *सनद परवाना बही* सं. 10, वि.सं. 1827/1770 ई.
[56] *सनद परवाना बही* सं. 18, वि.सं. 1834/1777 ई.
[57] *सनद परवाना बही* सं. 18, वि.सं. 1834/1777 ई.

हुआ? लेकिन इतना ज़रूर है कि इस मामले की सुनवाई तीन बार की गयी। यह दर्शाता है कि अणदीये के बनिया जाति का सदस्य होने के कारण जागीरदार उसे गाँव से निष्कासित नहीं कर सकता था।

मारवाड़ रियासत और डाकण

मारवाड़ राजदरबार द्वारा डाकण संबंधित मामलों की अपीलों की सुनवाई एवं उसके बाद दिये गये निर्देशों से डाकण की अवधारणा के प्रति इस रियासत का दृष्टिकोण स्पष्ट होता है। ज़ाहिर है कि सामंती राज्य स्त्रियों के डाकण बनने की मान्यता में पूर्ण विश्वास करता था। इसी आधार पर वह समाज में लोगों द्वारा चिह्नित डाकणों की जाँच-पड़ताल करवाने की स्वीकृति तथा आदेश देता था। डाकण प्रमाणित होने पर रियासत की तरफ़ से स्त्री को गाँव/शहर की सीमा से बाहर निकाल देने का दण्ड निर्धारित था। आम तौर पर रियासत द्वारा इन मामलों में अपनी तरफ़ से किसी प्रकार की पहल नहीं की जाती थी। रियासत की दख़ल तब शुरू होती थी जब कोई अपील रियासत के दरबार/कचहरी के सामने आती थी। ये अपीलें डाकण-घोषित स्त्री द्वारा स्वयं अथवा उसके परिवार द्वारा की जाती थीं, या फिर समाज के किसी सदस्य द्वारा डाकण के कारण हुए नुक़सान की भरपाई अथवा डाकण को दण्ड दिलवाए जाने के लिए की जाती थीं।

आम तौर पर दरबार का सामान्य आदेश था कि डाकण होने के शक के आधार पर किसी स्त्री के साथ बदसलूक़ी नहीं की जानी चाहिए। जब तक उसके डाकण होने या न होने की भली प्रकार जाँच-पड़ताल न कर ली जाए, आगे की कार्रवाई नहीं की जानी चाहिए। ज़ाहिर है कि रियासत सैद्धांतिक रूप से स्त्रियों को समाज में डाकण चिह्नित करने तथा उनके साथ शारीरिक रूप से दुर्व्यवहार के ख़िलाफ़ थी, परंतु व्यवहार में स्त्रियों के साथ डाकण के नाम पर समाज में आमतौर पर ज़्यादतियाँ होती रहती थीं। उन्हें शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, भावनात्मक, आर्थिक आघात पहुँचाए जाते थे। व्यवहार में डाकण के नाम पर अत्याचार करने वालों के ख़िलाफ़ रियासत द्वारा सख़्त क़दम नहीं उठाया जाता था, न ही उन्हें आर्थिक या शारीरिक दण्ड दिये जाते थे। ग़ौरतलब यह भी है कि रियासत स्वयं भी डाकण के मामलों में जाँच-पड़ताल के आदेश देती थी, तथा डाकण-घोषित स्त्रियों की धीज (परीक्षा) ली जाती थी जिसके माध्यम से स्त्री को स्वयं की बेगुनाही साबित करनी पड़ती थी कि वह डाकण नहीं बल्कि सामान्य स्त्री है। धीज से डर कर स्त्रियाँ आत्महत्या तक कर लेती या गाँव छोड़ कर चली जाती थीं। इसके अतिरिक्त उनके साथ डाकण के नाम पर मारपीट की जाती और कभी-

रियासत सैद्धांतिक रूप से स्त्रियों को समाज में डाकण चिह्नित करने तथा उनके साथ शारीरिक रूप से दुर्व्यवहार के ख़िलाफ़ थी, परंतु व्यवहार में डाकण के नाम पर समाज में आम तौर पर ज़्यादतियाँ होती रहती थीं। उन्हें शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, भावनात्मक, आर्थिक आघात पहुँचाए जाते थे।

कभी तो हाथ पैर तोड़ दिये जाते थे। इन स्त्रियों को क़ैद करके कोड़े मारे जाते थे। रियासत के पास डाकण का मामला आने से पहले ही कर्मचारियों द्वारा स्त्रियों तथा उनके परिवार के साथ मार-पीट तथा आर्थिक लूटखसोट शुरू हो जाती थी।

स्त्रियों को डाकण की श्रेणी में डालने का एक और पहलू था। मध्यकाल में चिकित्सा सुविधाओं के अभाव में एक साथ कई शिशुओं की मृत्यु हो जाती थी। पश्चिमी राजस्थान में पानी में शोरे[58] (फ़्लोराइड) की मात्रा अधिक होने पर बच्चों का यकृत (कलेजा) ख़राब हो जाता था। पीने वाले जल की अशुद्धता तथा कुपोषण आदि के कारण बच्चों को सूखने की बीमारी भी हो जाती थी। आम लोगों के पास किसी प्रकार की सुविधाओं की कमी एक साथ कम उम्र के कई शिशुओं की मृत्यु गाँवों में खलबली मचा देती थी। वैसे भी राजस्थान हमेशा से विरल जनसंख्या वाला क्षेत्र रहा है। ऐसे में बच्चों की मृत्यु का कारण चाहे कुछ भी रहा हो, उसे केवल शक के आधार पर डाकण के सिर मढ़ दिया जाता था।

रियासत द्वारा 'डाकणों' की जाँच-पड़ताल

मारवाड़ रियासत द्वारा हमेशा इस बात पर बल दिया जाता था कि स्त्री के डाकण होने की पहले जाँच-पड़ताल की जानी चाहिए। सनद परवाना बहियों में इस जाँच-पड़ताल के लिए विशेष शब्दावली प्रयुक्त की जाती थी जिसके तहत समानार्थी शब्द 'नीस-तुक' एवं 'धीज' भी प्रयुक्त किये गये हैं। धीज का शाब्दिक अर्थ धीरज होता है। यह स्त्रियों के धीरज की परीक्षा होती थी कि उसमें किस हद तक दर्द सहन करने की क्षमता है। सीताराम लालस धीज को न्याय करने की एक प्राचीन विधि बतलाते हैं।[59] धीज के माध्यम से किसी प्रकार की शंका का निवारण किया जाता था। मनोहर शर्मा के *राजस्थानी बात साहित्य* में धीज को राजस्थानी भाषा का शब्द बताया गया है जो कि हिंदी के शब्द दिव्य तथा सत्यक्रिया के समकक्ष है।[60] अर्थात् धीज का अर्थ हुआ अत्यंत कठिन परीक्षा दे कर अपने सत्य का भाव प्रकट करना। भारतीय कथा साहित्य में सबसे बड़ी धीज के तौर पर सीता की अग्नि परीक्षा को देख सकते हैं। *राजस्थानी बात साहित्य* में धीज कई प्रकार की बताई गयी है। धीज का एक तरीक़ा इस प्रकार बताया गया है : एक कढ़ाव में तेल भर कर उसे काफ़ी गर्म किया जाना, फिर उस में लोहा डाल दिया जाना और उस लोहे को कढ़ाव में से हाथ डाल कर निकालना।[61] इसके अतिरिक्त अग्नि तथा जल में भी धीज करवाई जाती थी।[62]

सनद परवाना बहियों के अनुसार डाकण-चिह्नित स्त्रियों की जाँच-पड़ताल के लिए कई प्रकार की धीज ली जाती थी। परगना सोजत में चौधरी लालै मनोहर ने सिखणी डायली को मिट्टी में दबा कर उसे गर्म लोहे से दागा, लेकिन डायली द्वारा राज दरबार में की गयी अपील में यह दावा किया गया कि चूँकि वह डाकण नहीं है इसलिए लोहे से दागने के बावजूद उघड़ा (जलने का निशान) नहीं पड़ा जिससे साबित होता है कि वह डाकण नहीं है। अगर वह डाकण होती तो उसके शरीर पर निशान पड़ जाता। इस प्रकार डायली की निर्दोषिता साबित हुई तथा रियासत ने उसे घर सीख (विदाई) देने का आदेश दे कर कहा कि जिन लोगों ने उस पर डाकण होने का आरोप लगाया था उन्हें अच्छी तरह समझाने का आदेश दिया गया।[63] इसी प्रकार गाँव गंगराणी के भोमिया नवल सिंघ ने कहा गंगराणी की कुम्हारी मेरे बेटे को खा गयी। यह डाकण है।

---

[58] *द इम्पीरियल गज़ेटियर ऑफ़ इण्डिया, द इण्डियन एम्पायर,* खण्ड-1 (1907) : 432-39.
[59] सीताराम लालस (1986), वही : 735.
[60] मनोहर शर्मा (1976) : 59-61.
[61] वही.
[62] वही.
[63] *सनद परवाना बही* सं. 24, वि.सं. 1837/1780 ई.

कुम्हारी को पीटते-पीटते कचहरी ला कर उसकी आँखों में मिर्च डलवाई गयी। जब कुम्हारी के आँखों में मिर्च के कारण पानी आ गया तो उसकी बेगुनाही साबित हो गयी। इस पर कचहरी से कुम्हारी को ओढ़नी पहना कर विदाई दी गयी। रियासत ने इस मामले में दोषी व्यक्ति भोमिया नवल सिंघ पर कचहरी के कर्मचारियों द्वारा किसी प्रकार की कार्रवाई न करने का कारण पूछा तथा भोमिया पर घर माफ़िक़ गुनहगारी (आर्थिक दण्ड) लगाने का आदेश दिया।[64]

परगना सोजत के गाँव सीरीयारी के महाजन बीजा की पत्नी पर जागीरदार के कामदार महाजन जतीया आदि द्वारा डाकण होने का आरोप लगाया गया। बीजा द्वारा अपनी पत्नी पर डाकण के आरोप लगाने वालों के विरुद्ध कचहरी में अपील की गयी। जिसके अनुसार बीजा द्वारा इस अपील में कहा गया कि उसकी पत्नी को उचित न्याय दिया जाए। इस पर गाँव सीरीयारी के लोगों तथा कामदार के समक्ष बीजा की पत्नी की धीज ली गयी, जिसमें बीजा की पत्नी का डाकण न होना प्रमाणित हुआ। इस पर बीजा की पत्नी को नये कपड़े पहनाकर उसे उसके परिवार के साथ घर भेज दिया गया।[65] परगना सोजत के गाँव सीरीयारी के मोची समरथ द्वारा अपील की गयी जिसके अनुसार उसकी माँ को दले नामक व्यक्ति द्वारा डाकण कहा गया, परंतु जब उसकी माँ की धीज ली गयी तो उसकी माँ का डाकण होना झूठा साबित हुआ।[66] गाँव वलाड़ा के कुम्हार दलीये की पत्नी को जागीरदार डाकण चिह्नित करके उसके पति के साथ उसकी पिटाई करते हुए कचहरी ला रहे थे कि दलीये की पत्नी ने रास्ते में ही पिटाई से डर कर कुएँ में कूद कर जान दे दी। रियासत द्वारा दलीये की पत्नी द्वारा कुएँ में गिर कर मृत्यु होने को उसका डाकण होना माना गया।[67] गाँव जांढ़ण के भगत गुणै द्वारा रियासत से अपील की गयी कि उसकी पत्नी पर डाकण होने का भ्रम ज़ाहिर हुआ था। उसे जाँच पड़ताल में घाटै पार (गला दबा कर मार डालना) कर दिया गया और मेरा घर ज़ब्त कर लिया गया। रियासत द्वारा इस केस की सुनवाई पर आदेश दिया गया कि भगत गुणै के घर का ताला खुलवा कर वापिस कर दिया जाए एवं इसकी पत्नी के डाकण होने के बाबत अब उसे किसी प्रकार परेशान न किया जाए।[68] ऊपर दिये गये कुछ उदाहरणों से स्पष्ट है कि दरबार अथवा कचहरी के पास डाकण संबंधी अपील आने से पहले तथा बाद में भी चिह्नित स्त्रियों को प्रताड़ना से गुज़रना पड़ता था। प्रताड़ित करने वाले कर्मचारियों अथवा दूसरे पुरुषों को इस मामले में कठोरतापूर्वक दण्डित नहीं किया जाता था, बल्कि जिन स्त्रियों की डाकण की परीक्षा लेने के नाम पर जान चली गयी उन्हें रियासत द्वारा डाकण मान लिया जाता था।

निष्कर्ष

मारवाड़ समाज में डाकण कुप्रथा के विभिन्न स्वरूप तथा पक्ष थे। मध्यकालीन समाज में डाकण की अवधारणा को किसी एक अर्थ में सीमित नहीं किया जा सकता। अठारहवीं शताब्दी में मारवाड़ की रियासत एवं समाज में स्त्री के डाकण बनने की अवधारणा के विश्वास की जड़ें गहराई से जमी हुई थीं। समाज में लोगों के मन में डर बैठा हुआ था कि कहीं डाकण अपनी बुरी नज़र से उनके परिवार में किसी प्रकार की अनहोनी न कर दे। इस कुप्रथा के ऐतिहासिक स्वरूप के निर्धारण में सामंतवादी राजपूत रियासतें तथा पितृसत्तात्मक समाज की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। अधिकांशत: डाकण के मामलों में पुरुषों द्वारा समाज में डाकण होने का वातावरण तैयार किया जाता था। पितृसत्तात्मक समाज एवं जाति आधारित राजनीति डाकण कुप्रथा के ऐतिहासिक स्वरूप-निर्धारण में महत्त्वपूर्ण घटक थे।

---

[64] *सनद परवाना बही* सं. 13, वि.सं. 1830/1773 ई.

[65] *सनद परवाना बही* सं. 13, वि.सं. 1830/1773 ई.

[66] *सनद परवाना बही* सं. 25, वि.सं. 1838/1781 ई.

[67] *सनद परवाना बही* सं. 10, वि.सं. 1827/1770 ई.

[68] *सनद परवाना बही* सं. 34, विं.स. 1834/1777 ई.

आम तौर पर कमज़ोर जातियों की स्त्रियों को डाकण चिह्नित करने में उच्च जाति एवं शक्तिशाली पद वाले पुरुषों की अहम भूमिका नज़र आती है। मध्यकालीन नारी के जीवन से जुड़ी हुई विभिन्न कुरीतियों— सती, कन्या-वध, पर्दा-प्रथा आदि की तरह ही यह एक कुप्रथा थी जिसमें कमज़ोर जातियों की स्त्रियों को डाकण के नाम पर प्रताड़ित किया जाता था।

डाकण के मामले में कचहरी अथवा दरबार में अपील करने पर भी रियासत द्वारा पीड़ित स्त्री की सुरक्षा के स्थान पर स्त्री डाकण है या नहीं की जाँच-पड़ताल शुरू करवा दी जाती थी जो अपने आप में किसी प्रकार से कठोरतम दण्ड से कम नहीं होती थी। रियासत के पास डाकण का मामला आने से पूर्व तथा पश्चात् स्त्रियों को डाकण चिह्नित कर प्रताड़ित किया जाता था। यह उनके तथा उनके परिवार का आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से शोषण था। पितृसत्तात्मक समाज में यह डाकण के ऐतिहासिक स्वरूप के निर्धारण की एक प्रकिया थी जिसने आगे की शताब्दियों में बहुत विकराल रूप धारण कर लिया। कमज़ोर जाति की किसी स्त्री पर डाकण होने का ठप्पा एक बार लग जाता था, तो उसी समय से उसके जीवन में मुसीबतें शुरू हो जाती थीं। सामान्यत: समाज में स्त्री को डाकण के रूप में चिह्नित करने वाला पुरुष ही होता था— चाहे वह उसका कोई परिजन हो या उसकी जाति का सदस्य या फिर मुखिया।

आभार

इस लेख में सहयोग तथा दिशा-निर्देशों के लिए मैं अपने शिक्षकों आभा सिंह, सूरजभान भारद्वाज और मयंक कुमार की तहेदिल से शुक्रगुज़ार हूँ। इनके सहयोग के बिना इस विषय पर शोध और लेखन सम्भव नहीं था। मैं कमल नयन चौबे के सहयोग के लिए भी आभारी हूँ।

संदर्भ

कंचन माथुर (2009), 'विच क्राफ़्ट, विचेज़ ऐंड सोशल एक्सक्लूज़न', स्वाति शिरवाडकर (सं.), *फ़ैमिली वायलेंस इन इण्डिया : ह्यूमन राइट्स, इशूज़, एक्शंस ऐंड इंटरनैशनल कम्पैरिज़ंस,* रावत पब्लिकेशंस, जयपुर.

ज़हूर ख़ाँ मेहर (2018), *धर मजला धर कोसा,* जोधपुर, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, द्वितीय संस्करण.

द इम्पीरियल गज़ेटियर ऑफ़ इण्डिया, द इण्डियन एम्पायर, खण्ड-1 (1907), डिस्क्रिप्टिव, ऑक्सफ़र्ड, द क्लेरेंडन प्रेस.

मनोहर शर्मा (1976), *राजस्थानी बात साहित्य,* राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी, जोधपुर.

रुस्तम भरूचा (2009), *राजस्थान : एन ओरल हिस्ट्री— कनवर्जेशंस विद कोमल कोठारी,* पेंगुइन बुक्स, नयी दिल्ली.

शशांक शेखर सिन्हा (2015), 'कल्चर ऑफ़ वॉयलेंस ऑफ़ कल्चर्स : आदिवासी'ज़ ऐंड विच हंटिंग इन छोटा नागपुर' *ऐनजिलिस्टीका एआईओएन* : 19.1.

सनद परवाना बहियाँ सं. 8 से 34 कर, वि.सं. 1827/1770 ई. से 1838/1781 ई. तक, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर.

सीताराम लालस (1967), *राजस्थानी सबद कोस,* द्वितीय खण्ड, उपसमिति राजस्थानी सबद कोस, जोधपुर.

-----------(2006), *राजस्थानी-हिंदी संक्षिप्त शब्दकोश,* प्रथम खण्ड, ग्रंथांक-156, चौपासनी शिक्षा समिति, जोधपुर.

-----------(2015), *राजस्थानी सबद कोस, राजस्थानी बृहत् कोश,* खण्ड 2 और 4 (ठ से ध), चौपासनी शिक्षा समिति, जोधपुर.